QUARTERLY NEWSLETTER OF ARYA SAMAJ INDIRANAGAR

Swami Dayananda Saraswati

Vaidic Dhwani

VOL 8 # 4

EDITION 31

OCTOBER-DECEMBER 2017

CONTENTS

Editorial 2
Pravachans 2
प्रभुभक्ति 3
सुख-दुःख का आधार : व्यवहार 5
Creation and its Wonders 9
The Hindus and the Geeta 13
Ved Shatak and Gayatri Yajna 15

Arya Samaj For Vaidic Dharma

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

Krinvanto Vishvam Aryam

Make this world noble

प्रभु की प्राप्ति

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥

– साम० पू० ३।१।१।३

विनय – हे मनुष्यो ! तुम अपने परमात्मा से प्रेम क्यों नहीं करते ? जहाँ हरिकथा होती है वहाँ से तुम भाग आते हो । बार-बार प्रभु-चर्चा होती देखकर तुम ऊबते हो, जबकि विषयों की चर्चाएँ सुनने के लिए सदा लालायित रहते हो । तुम्हें उस अपने पिता से इतना हटाव क्यों है ? तुम चाहे जो करो, वह देव तो तुम्हें कभी भुला नहीं सकता । वह तो तुम्हें प्रेम से अपनी ओर आकर्षित ही कर रहा है, सदा आकर्षित कर रहा है, निरन्तर अपनी ओर खींच रहा है । तुम जानो या न जानो, पर वह अत्यन्त समीपता के साथ माता की भाँति तुम पुत्रों की निरन्तर परिचर्या भी कर रहा है । वह परमेश्वर हमारे रोम-रोम में रमा हुआ, हमारे एक-एक श्वास के साथ आता-जाता हुआ, हमारे मन के एक-एक चिन्तन के साथ तद्रूप हुआ-हुआ और क्या कहें, हमारी आत्मा की आत्मा होकर, एक अकल्पनीय एकता के साथ हमसे जुड़ा हुआ है । हमें संसार में जो कुछ प्रेम, आराम, वात्सल्य, भोग, सेवा, सुख मिल रहा है वह किन्हीं इष्ट-मित्रों या प्राकृतिक वस्तुओं से नहीं मिल रहा है, वह सब हमारे उस एक अनन्य सम्बन्धी परम दयालु प्रभु से ही मिल रहा है । वह केवल हमें अपनी ओर खींच ही नहीं रहा है, अपितु अति समीपता से निरन्तर हमारी सेवा भी कर रहा है, प्रेम-प्रेरित होकर हमारी सेवा कर रहा है, हमारा पालन, पोषण, रक्षण, दुःखनिवारण आदि सब परिचर्या कर रहा है । अरे ! वह तो कहीं छिपा हुआ भी नहीं है । उसके और हमारे बीच में कोई भी आवरण नहीं है । उसे ढका हुआ, आच्छादित भी कौन कहता है ?

हे मनुष्यों सच बात तो यह है कि यदि हम उसके इस प्रेमाकर्षण को जानने लग जाएँ – वे प्रभुदेव सदा प्रेम से हमें अपनी ओर खींच रहे हैं, यह हम सचमुच अनुभव करने लग जाएँ, तो हमें यह भी दीख जाए कि वे हमारे अत्यन्त निकट हैं और अत्यन्त निकटता के साथ हमारी सेवा कर रहे हैं और फिर एक दिन हमें यह भी दिख जाए कि वे ब्रह्माण्ड के रचयिता महापराक्रमी इन्द्र प्रभु – जिनके विषय में परोक्षतया हम इतनी बातें सुना करते थे, वे हमसे किसी आवरण से ढके हुए भी नहीं हैं । वे प्रत्यक्ष हमारे सामने हैं और यह दीख जाना ही परमात्मा का साक्षात्कार करना है, परम प्रभु को पा लेना है ।

The resplendent Lord is always close to you. He is ever drawn to you whenever you perform selfless services. He is indeed great, ever victorious, brave, supreme, benevolent and universally accepted by us.

– Swami Satya Prakash Saraswati
Satyakam Vidyalankar

Editorial

Man is the only creation of God gifted with the faculty of speech. He has been endowed with this blessing right from the time of his birth. We human beings have learnt to value only those things for which we pay a price or high price. Since we believe in the practice of the barter or trade i.e. pay and get, we just do not attach any extra value to this precious gift. Only the deprived ones, i.e. the dumb realize its true worth. On the other hand, even crores of rupees are not sufficient enough to purchase this, hence its great importance. Sweet words are the best way to make the right and proper use of this ability. Blessed are those gifted with a sweet voice as this has an enchanting effect. We must always speak gently. There is no weapon more dangerous and hurting than strong and bitter words. If not checked, it can play havoc. Only a coward uses his tongue as a weapon. There are antidotes to the poison of snake, the bite of dogs, but no medicine that can heal a heart wounded by harsh words.

विज्ञान कहता है कि जीभ का घाव सबसे जल्दी भरता है जबकि अध्यात्म कहता है कि वाणी का घाव बहुत देर से भरता है ।

So, what is suggested is to be careful in the choice of our words. Sweet words are a proof that human beings are capable of working wonders.

Let there be no bitterness in our words, behaviour and conduct. Our Atharv Ved has lavishly sung the praise of this sweetness of the faculty of speech -

मधु॑मन्मे नि॒क्रम॑णं॒ मधु॑मन्मे परा॒य॑णम् ।
वा॒चा व॑दामि॒ मधु॑मद् भू॒यास॒ं मधु॑सन्दृशः ॥

– अथर्व० १।३४।३

– Harsh Chawla

Pravachans

Sh Ravi Bhatnagar ji

Dr Arun Dev Sharma ji

Smt Usha Shastri ji

Sh Lucky Khemani

Sh Rajendra Jigyasu ji from Paropkarini Sabha, Ajmer

Sh Ashish Shrivastav

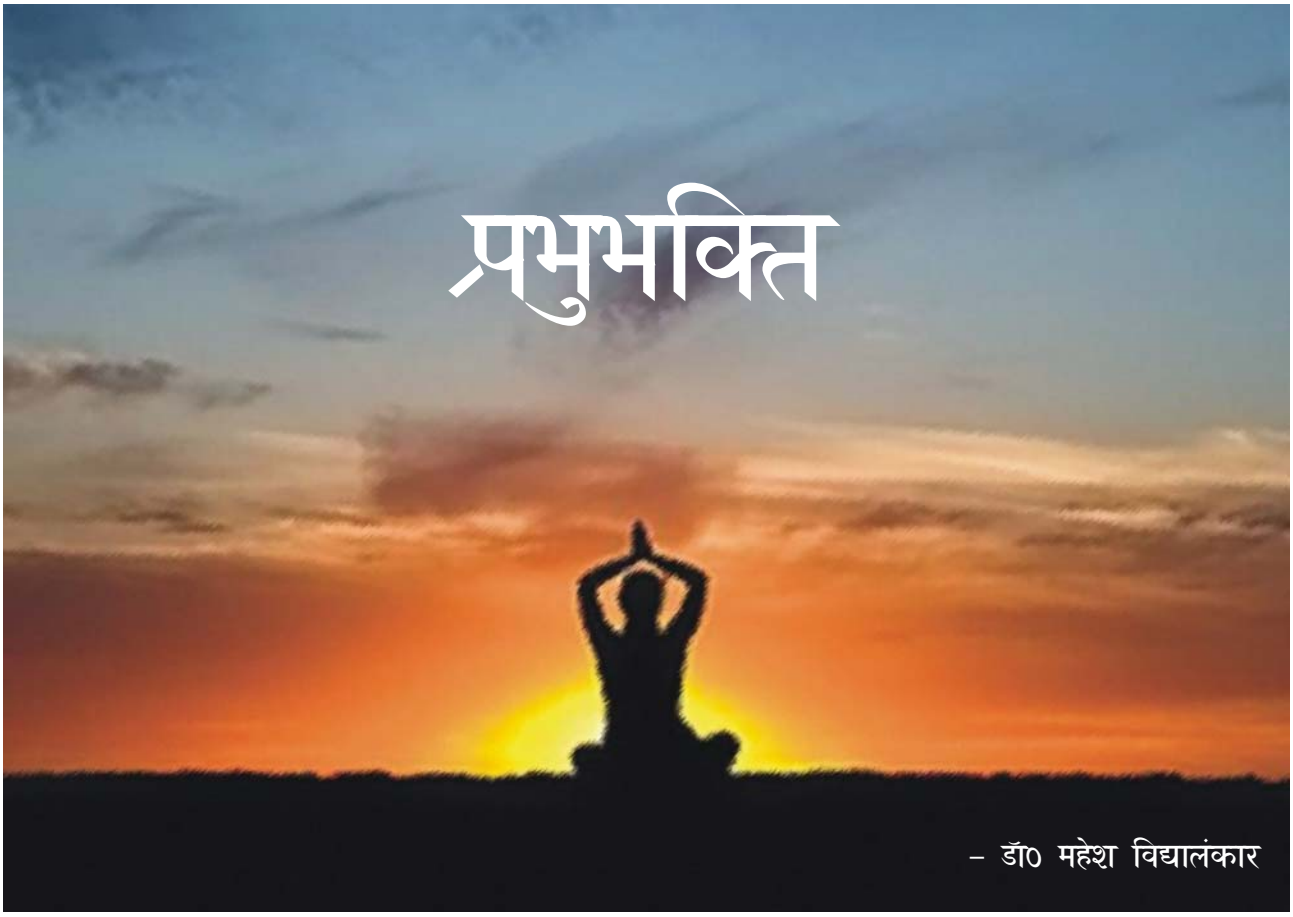

प्रभुभक्ति

– डॉ0 महेश विद्यालंकार

मानव जीवन के उद्देश्य की पूर्णता ईश्वरभक्ति से होती है । भक्ति का अर्थ है – निष्ठा, सेवाभाव, आत्मसमर्पण, श्रेष्ठकर्म और ईश्वर में दृढ़ विश्वास । अपने को सीधा और सरल बना लेना । बिना प्रभुभक्ति के जीवन अधूरा व नीरस माना जाता है । दुनिया के अधिकांश व्यक्ति उस दिव्य परमात्मा को जाने बिना ही संसार से चले जाते हैं । प्रायः लोगों को सच्चे परमेश्वर के बारे में पता ही नहीं है । जैसे शरीर के लिए भोजन की जरुरत होती है, ऐसे ही मन, बुद्धि तथा आत्मा के लिये ईश्वरभक्ति आवश्यक है । भक्ति आत्मा का भोजन है । परमात्मा की भक्ति से बढ़कर आत्मा को आनन्द, शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता आदि देने एवं जीवन को पवित्र बनाने वाली और कोई चीज नहीं है ।

संसार के सुखभोग क्षणिक हैं । परमात्मा की भक्ति से स्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है । भक्ति से मन कभी भरता तथा ऊबता नहीं है । प्रभुभक्ति के गीत, भजन, कीर्त्तन, प्रार्थना, ध्यान आदि से मन बेचैन व उचाट नहीं होता । इससे आत्मा को भोजन मिलता है और वह आनन्दित होती है । आत्मा को परम आनन्द की प्राप्ति के लिये प्रभु के पास जाना ही पड़ेगा । सच्चे आत्मज्ञानी को जगत् के भोगपदार्थों में रस नहीं आता है, परन्तु इसके विपरीत जो दिनरात विषयभोगों में लिप्त रहते हैं, उन्हें भगवान् की चर्चा में रस व मस्ती नहीं आती है । प्रभुभक्ति की मस्ती का आनन्द विरले भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है । साधारण आदमी की सोच तथा पहुँच तो शरीर, संसार एवं भोगपदार्थों तक ही सीमित रहती है । यह कथन बड़ा सार्थक ए वं प्रेरक है –

'कालः क्रीडति गच्छत्यायुः'

काल खेल रहा है । सभी को यह अपना ग्रास बनाये जा रहा है । आयु बीतती जा रही है । दिन बीत रहे हैं, सुबह होती और शाम होती है, यों ही जिन्दगी गुजरती चली जाती है । फिर भी आशा, तृष्णा, लोभ, लालच आदि नहीं छूट पाते ।

पचास साल पूरे होने पर यह समझना चाहिये कि आधा जीवन काल के मुख में जा चुका है । बाल सफेद होने लगें, दाँत गिरने लगें, आँखों में अन्धेरा छाने लगे और इन्द्रियों में शिथिलता आने लगे तो समझो काल ने बुढ़ापे और मृत्यु की सूचना दे दी है । सँभल जाओ । भगवद्भक्ति की ओर चल पड़ो । इसी में कल्याण है । अज्ञानी व्यक्ति प्रभु की भक्ति तब करता है, जब मृत्यु उसके सम्मुख आकर खड़ी हो जाती है । तब धन, दौलत, पढ़ाई–लिखाई, साधन–सुविधाएँ, बन्धु–बान्धव कोई काम नहीं आते हैं ।

प्रायः लोग सोचते हैं कि "बुढ़ापे में भक्ति, पूजा, प्रार्थना, सत्संग आदि कर लेंगे; बचपन और यौवन में इस झंझट में क्यों पड़ें ।" यह तो ऐसे ही है जैसे आम खाकर गुठलियों का दान कर देना । जवानी अन्धे होकर विषयभोगों, इच्छाओं, धनसंग्रह आदि में निकाल दी, बुढ़ापे में जर्जरित शरीर व हड्डियों के ढाँचे को प्रभु को समर्पित कर रहे हैं । बुढ़ापे में देहपूजा हो सकती है, देवपूजा नहीं । बुढ़ापे की भक्ति मजबूरी की भक्ति है । यदि जवानी में भक्ति में मन न लगा तो बुढ़ापे की भक्ति में वही पहले की अनुभूत संसार की बातें ही याद आएँगी, मन बेचैन होगा और इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ेंगी और संसार अपनी ओर खींचेगा

। मौत का कोई भरोसा नहीं है । उसके लिये सदा तैयार रहना चाहिये । न जाने कब आ धमके और कब सब कुछ छोड़कर संसार से जाना पड़े । कवियों के कथन हमें चेतावनी देते हैं –

जब तेरी डोली निकाली जायेगी ।
बिन मुहूरत ही उठा ली जायेगी ॥

क्या भरोसा है जिन्दगानी का,
आदमी बुलबुला है पानी का ।

दो दिन का दुनिया में मेला रहेगा,
कायम यह जग में झमेला रहेगा ।
लोग भी चलेंगे श्मशान तक,
बेटा भी हक निभायेगा अग्निदान तक ॥

समय, शक्ति और साधनों के रहते हुए व्यक्ति को सचेत हो जाना चाहिये । समय गुजर जाने के बाद पछताने से कुछ हाथ न लगेगा । इस दुर्लभ मानवजीवन में ही व्यक्ति भक्ति करने का अधिकारी बनता है । संसार में सबसे बड़ा पापी, कृतघ्न और अपराधी वह व्यक्ति माना जाता है, जो किए हुए उपकारों को नहीं मानता है । ठीक ही कहा है –

तूने मुझको सब कुछ दिया ।
मैंने तेरा धन्यवाद भी न किया ॥

हम पर ईश्वर के अनन्त उपकार दिनरात बरस रहे हैं । जब दुनिया में हम आये थे, तब हमारे पास क्या था । आज क्या नहीं है ? हम प्रभु के दिए हुए वरदानों व उपकारों को नहीं देखते हैं परन्तु कुछ अभावों को लेकर रोते हैं ।

दुनियादारी में यदि कोई हमारी मदद करता है तो हम उसके आगे सदा झुकते हैं । कोई चाय पिला देता, कर्ज दे देता या सहयोगी बनता है तो हम सदा उसका अहसान मानते हैं । जिस परमात्मा ने सर्वश्रेष्ठ मानवजीवन दिया और जीने के लिये जिसने इतने साधन–सुविधाएँ दी हैं, जो निरन्तर हमारे जीवन को चला रहा है, जो रात्रि को सुलाकर प्रातः उठा देता है और जिसने हवा, पानी, प्रकाश आदि निःशुल्क दिए हैं, उसका हम धन्यवाद तक नहीं करें तो इस से बढ़कर और कृतघ्नता क्या होगी । आम आदमी चौबीस घण्टे में २१६०० श्वास लेता है । यदि परमात्मा एक श्वास पर एक पैसा टैक्स लगा देता तो क्या हम इतना टैक्स चुका पाते ? उसने हमें सब कुछ मुफ्त में दिया है । जो हमारे जीवन का रक्षक, पालक तथा प्रेरक है, ऐसे परमेश्वर का स्मरण, मनन, नमन और उसकी भक्ति करना क्या हमारा प्रथम कर्त्तव्य नहीं है ?

परमात्मा को हमारी पूजा, प्रार्थना व भक्ति की जरुरत नहीं है, परन्तु हमें ईश्वर की दया और कृपा की कदम–कदम पर आवश्यकता है । उसके बिना हमारा जीवन नहीं चल सकता है । प्रायः जो कुछ हमें सहज में और बिना मेहनत के मिल जाता है, हम उसकी कीमत नहीं आँकते हैं । जब कोई चीज हाथों से निकलने लगती है, तब हम उसकी कीमत समझते हैं । सूर्य का प्रकाश नित्य प्राप्त होता है । हवा, पानी निरन्तर मिल रहे हैं तथा जब तक माता–पिता प्राप्त हैं हम उनकी परवाह नहीं करते हैं । जब ये चीजें हमसे दूर होने लगती हैं, तब हम परेशान और दौड़े–दौड़े फिरते हैं । ऐसे ही परमात्मा की दया, कृपा एवं उपकार सहज में प्राप्त हैं । वह हमारी जीवनयात्रा पग–पग पर चला रहा है । हमें कष्टों से बचा रहा है, परन्तु खेद का विषय यह है कि हम उसके उपकारों की कोई कीमत नहीं समझते हैं । यहाँ तक कि हम उसका धन्यवाद तक नहीं करते हैं । कृपालु, दयालु, पालक, प्रेरक और सहायक परमपिता का स्मरण और धन्यवाद न करना सबसे बड़ा पाप व कृतघ्नता है । प्रभुभक्ति मनुष्य को जरुर करनी चाहिए ।

Come One, Come All!

Avail the opportunity to learn from the Vedas - the eternal source of true knowledge.

The ASMI Library is equipped with a large number of books for which you have the options of

- Purchase as an investment for generations
- Get books issued and read them at home
- Come and read here the treasure trove of knowledge to increase your self-awareness.

सुख-दुःख का आधार : व्यवहार

– डॉ0 अरुण देव शर्मा

संसार में जन्म लेते ही सब प्राणी अपने प्राणों की रक्षा करने लगते हैं । अन्न, जल, भोजन, वस्त्र, आवास आदि सामान्य साधन सबको चाहिएँ, चाहे वह प्राणी मनुष्य हो या अन्य कोई, मनुष्यों में भी विद्यार्थी हो या गृहस्थी, वानप्रस्थी हो या संन्यासी, सबको ये जीवन-रक्षक साधन चाहिएँ । परमात्मा ने कृपा करके हमें अन्य मनुष्येतर प्राणियों से विशिष्ट प्राणी बनाया है और हमें सबसे श्रेष्ठ साधन इन्द्रियाँ, बुद्धि और मानव-शरीर आदि बनाकर दिए हैं । जिनके द्वारा हम स्वयं भी अनेक दुःखों से छूटकर सुखी हो सकते हैं और अन्य मनुष्यों व प्राणियों को भी दुःखों से छुड़ाकर सुखी कर सकते हैं । ऐसा करना ही हमारे मनुष्य जीवन का मुख्य प्रयोजन है कि स्वयं सब दुःखों से छूटकर नित्य आनन्द को प्राप्त करना और अन्यों को कराना । जिसके लिए हमें पर्याप्त सामान्य और विशेष ज्ञान, बल, धनादि साधनों की आवश्यकता होती है । जिन्हें पाने के लिए हमें अत्यन्त पुरुषार्थ करना चाहिए ।

सामान्य साधनों से हमारे सामान्य दुःख दूर होते हैं और हमें सामान्य सुख मिलते हैं । विशेष साधनों से हमारे बड़े-बड़े जन्म-मरणादि दुःख दूर होते हैं और हमें विशेष सुख मिलते हैं । हम सबका जो सबसे मुख्य साध्य है वह है परमानन्द परमात्मा । परमेश्वर को साधने, पाने के लिए हमें उन विशेष साधनों की आवश्यकता होती है, जिनसे युक्त होने पर हम साधक बनकर साधना कर सकते हैं । उन विशेष साधनों में सबसे पहला साधन **अहिंसा** है । जो कि हमारे सद्-व्यवहार की एक सबसे बड़ी विशेषता होनी चाहिए । अहिंसा पर सारे अध्यात्म की, धर्म की और ईश्वर-सिद्धि की इमारत खड़ी होती है । जो मनुष्य अपने मन, वाणी और शरीर से अन्य मनुष्य और प्राणियों के प्रति हानि, अनिष्ट आदि हिंसा के दुर्भावों को त्याग देता है, वही मनुष्य अपने जीवन में सम्यक् त्यागरूप संन्यास के फल, मोक्ष को प्राप्त करता है । महर्षि पतञ्जलि ने 'अहिंसा' को ही पुष्ट व दृढ़ करने के लिए इन यम-नियमादि मोक्ष के साधनों का उपदेश किया है । जो कि इस प्रकार हैं –

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी त्याग), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (अभिमान न करना), शौच (पवित्रता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान (प्रभु-समर्पण) और आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि ।

हमारी शिक्षा और विद्या ग्रहण करने की प्रक्रिया या प्रणाली में जब तक इन योग-साधनों के अभ्यास का समावेश नहीं होगा तब तक हमारा संसार साक्षरता से शिक्षा (सीखने) की ओर, दुर्व्यवहार से सद्व्यवहार की ओर तथा दुःख से सुख की ओर आगे नहीं बढ़ेगा । तब तक हम सब दुःखों से भी नहीं छूट सकते । इन साधनों को पाने का हमारा मुख्य प्रयोजन सबको दुःखों की बजाय सुख देना है । पशु-पक्षी आदि प्राणियों और हममें सबसे बड़ा अन्तर यही है कि हम मनुष्य अपने अरिरिक्त अन्य मनुष्यों व प्राणियों को भी प्रीतिपूर्वक भोजन, सुरक्षा, ज्ञान आदि देकर उन्हें दुःखों से छुड़ाकर सुखी कर सकते हैं । जो कि सबसे बड़ा पुण्य और धर्म का काम है ।

जगत् में आज मनुष्य बहुत से धन आदि सांसारिक सुख-साधनों को पाने के लिए अपना सारा जीवन लगा देता है, किन्तु उन विशेष अहिंसा आदि सुख-साधनों को नहीं अपनाता जिनमें संसार का सबसे अधिक सुख, आनन्द और शान्ति निहित है । सम्भवतः आज का मनुष्य अज्ञान-अन्धकार में इतना डूब गया है कि वह हिंसा, असत्य, अभिमान, असंयम आदि तनावकारी तत्त्वों को ही सुखदायक मान रहा है । वह इन दोषों में रहने का इतना अधिक अभ्यस्त हो गया है कि उसे इन दोषों को छुड़ाने के उपदेश उसे अच्छे नहीं लगते ।

यह तो सच है कि कोई मनुष्य कितना भी बड़ा बन जाए किन्तु वह होता अल्पज्ञ ही है । कोई कितना भी शिक्षित, बुद्धिमान् और सावधान रहे किन्तु अल्पज्ञ होने से जाने-अनजाने कोई न कोई भूल या गलती सबसे होती है । किन्तु गलती गलती होती है, चाहे अपनी हो या दूसरों की, उसे गलती ही मानना चाहिए और उसे जानकर दूर कर लेना चाहिए । अल्पज्ञता से कभी किसी से कोई भूल हो भी जाए तो उसे सहन कर लेना चाहिए । लौकिक साधनों को प्राप्त करने में मनुष्य से ऐसे अनेक दोष होते हैं जैसे अर्जन, रक्षण, हिंसा आदि । किसी भी वस्तु को पहले तो अर्जित करना कठिन, फिर उसकी रक्षा करना कठिन और इस बीच व्यक्ति से हिंसा भी होती है । अपने व्यवहार से दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से बचना चाहिए । यह अहिंसा ही अध्यात्म का मूल है, और कोई नहीं । कोई भी हिंसक व्यक्ति प्रभु का कृपापात्र नहीं हो सकता ।

हमारे पास सुख नहीं है, और जिस चीज में हम सुख समझते हैं, उसको हम पाना चाहते हैं । कभी-कभी हम अपने अज्ञान, भ्रम या संशय से दुःखदायक वस्तुओं तथा व्यवहारों को भी सुखदायक

मान लेते हैं । जैसे कि अधिकांश व्यक्ति अपने तथा अपने प्रियजनों के शरीरों को ऐसा मानते हैं कि यें शरीर सदा रहेंगे, बहुत सुन्दर, पवित्र, सुखरूप तथा चेतन हैं । इन्हें ऐसा मानकर इनसे जीवनभर सुख पाने की चेष्टा करते रहते हैं और इस घोर अज्ञान में भटके हुए रहते हैं । अपने इस अज्ञान से प्रिय वस्तु-व्यक्तियों से राग और अप्रिय लोगों से द्वेष करते हैं । यदि गहराई से देखें तो इन राग-द्वेषादि के पीछे व्यक्ति का अज्ञान और अभिमान होता है । अपने इन सब दुर्गुणों तथा शराब, सिगरेट, तम्बाकू, माँसाहार आदि दुर्व्यसनों को भी लोग अच्छा मानकर ग्रहण करते रहते हैं । जबकि यें सब पदार्थ तथा सब दुर्गुण, दुर्व्यसन, हिंसा, असत्य आदि व्यवहार नश्वर, अपवित्र, दुःखदायक तथा अन्तरात्मा के विरुद्ध हैं । इन दोषों के बढ़ने पर मनुष्य अनेक प्रकार के झूठ, छल-कपट, अन्याय, अधर्म, कुकर्म और अपराध करता है । जिनसे उस व्यक्ति का तो शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक तथा सामाजिक पतन होता ही है, उसकी देखादेखी अन्य मनुष्यों पर भी उसका दुष्प्रभाव पड़ता है और इससे संसार में दुःख बढ़ रहा है और सुख कम हो रहा है ।

संसार में दुःख भोगने का क्रम सृष्टि के आरम्भ से चल रहा है । जब हमें सौभाग्य से सत्य को जानने वाले किसी ईश्वरनिष्ठ गुरु का सानिध्य प्राप्त होता है तब हममें कुछ जागृति आती है । उनके सत्योपदेश से हम घोर अज्ञान-अंधकार से बाहर ज्ञान के प्रकाश में आते हैं और संसार को, स्वयं को तथा ईश्वर को कुछ साफ-साफ देख पाते हैं । अज्ञानमय क्षणिक सुख-दुःखों के भोगकाल में यदि हम योगाभ्यास नहीं करेंगे तो जन्म-जन्मान्तरों तक बार-बार इस दुःख-सागर में ही जन्मते, डूबते और मरते रहेंगे । किन्तु जब हमें संसार के भयंकर दुःख-स्वरूप का पता चलता है तब हम इससे विरक्त होकर सुखी होते हैं । क्या कभी हमने विचार किया है कि वास्तव में सुख-दुःख का मूल स्रोत कहाँ है ?

संसार में तीन वस्तुएँ हैं । जिनमें हम सुख ढूढ़ते हैं । जिनमें से एक वस्तु जड़ है, जिसे वेद, योग, सांख्य आदि शास्त्रों में सत्त्व, रज, तम रूप '**प्रकृति**' कहा गया है । प्रकृति ऊर्जा का सूक्ष्मतम रूप है । प्रकृति से भिन्न दो वस्तुएँ और हैं - एक '**ईश्वर**' और दूसरा '**जीव**' (आत्मा) । 'प्रकृति' संसार बनाने की कच्ची सामग्री का नाम है । एक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने अपने अनन्त विज्ञान और शक्तियों से प्रकृति से सृष्टि का निर्माण किया है । उसने प्रकृति को विभिन्न पदार्थों में रूपान्तरित करके हमारे जीने के लिए अग्नि, जल, पृथिवी, वायु, सूर्यादि लोक-लोकान्तर, मन, बुद्धि, शरीर, वनस्पति आदि पदार्थ बनाए हैं । यदि ईश्वर यह सृष्टि न बनाता तो आज तक हम सब जीव मूर्छित अवस्था में मिट्टी की तरह पड़े रहते । उस अत्यन्त अज्ञान-अंधकार में पड़े रहने से तो आज हम बेहतर हैं कि अब हम साक्षात् ईश्वर को व उसके संसार को जान सकते हैं, स्वयं को भी पहचान सकते हैं और सब दुःखों से छूटकर सुखी हो सकते हैं तथा अन्य मनुष्यों को भी अपने समान जानकर उनकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति में सहयोग कर सकते हैं । क्योंकि महर्षि दयानन्द ने भी आर्य समाज के नियम ५ में लिखा है -

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।"

जन्म से सब संसार के हम पञ्च-भौतिक पदार्थों के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द गुणों से सुख पा रहे हैं । इन रूप-रस-स्पर्श आदि के सुखों को बार-बार भोगने पर भी कोई सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि और अधिक असन्तुष्ट हो जाता है । हम अपने उस असन्तोष को मिटाने के लिए बार-बार इस संसार की ओर प्रवृत्त होते हैं, इन रूप आदि विषयों के सुख का ग्रहण करते हैं । ऐसा करने से हमारे जीवन में वह तृष्णा उत्पन्न होती है कि जिसका कहीं अन्त होता नहीं दीखता । इस तृष्णा के विषय में भर्तृहरि जी महाराज ने एक बहुत सुन्दर श्लोक लिखा है -

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥

- वैराग्यशतक, श्लोक १२

अर्थात् हम इन विषय-भोगों का भोग नहीं कर पाए अपितु इन भोगों ने हमें भोग लिया । हमने तप नहीं किया बल्कि दुःख ही हमें तपाते रहे । हमने समय को नहीं जिया प्रत्युत् काल ने हमें नष्ट कर दिया । इस तरह भोगों को भोगते रहने पर भी हमारी तृष्णा तो बूढ़ी नहीं हुई किन्तु हम ही बूढ़े हो गए ।

व्यक्ति वृद्ध होकर समाप्त हो जाता है किन्तु उसकी तृष्णा कभी बूढ़ी व समाप्त नहीं होती । ऐसे जीवन से व्यक्ति पूर्ण सुखी होने की बजाय और अधिक अशान्त और दुःखी हो जाता है तथा अपनी अविद्या की अधिकता से ईश्वर का आश्रय कठिन या परोक्ष मानते हुए उन भोग-सुख के साधनों से और अधिक मजबूती से चिपट जाता है । **महर्षि पतञ्जलि** ने संसार के इन विषय-सुखों में चार तरह के दुःख होने की बात कही है -

'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।'

- योगदर्शनम् २.१५

अर्थात् परिणाम, ताप, संस्कार तथा सत्त्वादि गुणों की वृत्तियों के परस्पर विरोध से विवेकी व्यक्ति को संसार के सभी पदार्थ दुःखमय दिखाई देते हैं ।

सूत्रकार ऋषि ने संसार के सब पदार्थों में जो चार प्रकार के दुःख बतलाए हैं, उन्हें देखने का प्रयास करें -

१. **परिणाम दुःख** - विषय-भोगों को भोगने के पश्चात् उनमें हमारी तृष्णा कम नहीं होती बल्कि बढ़ जाती है । इससे व्यक्ति दुःख का अनुभव करता है । यह तृष्णा-रूप दुःख, भोगों को भोगने के परिणाम स्वरूप होता है, इसलिए इसे 'परिणाम दुःख' कहते हैं ।

२. **ताप दुःख** – विषय-वस्तुओं से प्राप्त होने वाले सुखों में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं । इन बाधाओं से व्यक्ति दुःख का अनुभव करता है, यह 'ताप दुःख' है ।

३. **संस्कार दुःख** – सुख भोगने से सुख के संस्कार बनते हैं । उन संस्कारों से प्रेरित होकर व्यक्ति पुनः उस सुख को पाना चाहता है । किन्हीं कारणों से वह सुख उसे पुनः नहीं मिलता, कम मिलता है, देरी से मिलता है, अधिक कठिनाई या मूल्य चुकाने से मिलता है या प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है, तब उसे दुःख होता है । यह दुःख उन सुख के संस्कारों के कारण होता है । इसलिए इसे 'संस्कार दुःख' कहते हैं ।

४. **गुणवृत्तिविरोधदुःख** – सात्त्विक वृत्तियों (अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, परोपकार आदि) तथा राजसिक व तामसिक वृत्तियों (हिंसा, झूठ, असंयम, स्वार्थ आदि) में परस्पर विरुद्ध स्वभाव होने से टकराव होता है, इनके टकराव या विरोध से व्यक्ति के मन में अशान्ति व खिन्नता से दुःख उत्पन्न होता है । उसे 'गुणवृत्तिविरोध दुःख' कहते हैं ।

व्यक्ति जिन विषय-सुखों को केवल सुख मान कर भोग रहा है वें केवल सुख नहीं हैं, उनमें तो यें चार तरह के दुःख मिले हुए हैं । जैसे विष-युक्त भोजन त्याग देना चाहिए वैसे ही विषय-सुख भी त्याग देने चाहिएँ । किन्तु व्यक्ति अपनी अविद्या के कारण इन सांसारिक सुखों का त्याग नहीं करते । जब तक हम अपने भीतर छिपी हुई इस अविद्या को जानेंगे नहीं तब तक हम इसे नष्ट भी नहीं कर सकते ? जो कि हमारे समस्त दुःखों की जननी है । महर्षि पतञ्जलि ने अविद्या का यह स्वरूप बतलाया है –

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।

– योगदर्शनम् २.५

अर्थात् अनित्य, अपवित्र, दुःख तथा अनात्मा में (क्रमशः) नित्य, पवित्र, सुख व आत्मा का मिथ्या (झूठा) ज्ञान होना 'अविद्या' है ।

अविद्या ४ प्रकार की होती है – १. अनित्य शरीर व संसार को नित्य मानना और नित्य परमात्मा व आत्मा को अनित्य मानना, २. अपवित्र मल-मूत्रादि से परिपूर्ण शरीर को पवित्र व सुन्दर मानना और पवित्र व सुन्दर ईश्वर, आत्मा, सत्य, विद्या, धर्म, सत्संग आदि को अपवित्र व असुन्दर मानना, ३. काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ, अहंकार आदि दुःखदायक व्यवहारों, विषय-भोगों में सुख-बुद्धि तथा मन-इन्द्रियों के नियन्त्रण, सन्तोष, विद्या-प्राप्ति, परसेवा आदि कर्मों को दुःखरूप मानना, ४. शरीर, मन आदि जड़ वस्तुओं को चेतन व अपना अंश मानना और चेतन आत्मा व परमात्मा को जड़ मानना ।

अपने प्रत्येक दुर्गुण व दोष को जानकर उसे दूर करने वाला साधक ही अविद्या का नाश कर सकता है । जो अपने दोषों को अपना स्वरूप मानता है और उनसे प्यार करता है ऐसा व्यक्ति अविद्याग्रस्त ही रहता है । जिस परमात्मा की प्राप्ति में हम दुःख-कष्ट मानते हैं उसमें कोई दुःख नहीं है बल्कि सदा पूर्ण सुख है और जिस संसार को सुखमय समझते हैं वह दुःखरूप है । जिस संसार को सदा अपने साथ रहने वाला मानते हैं, यह सदा साथ रहने वाला नहीं है और जो ईश्वर सदा साथ रहता है उसे जानते-मानते नहीं हैं और उसका विशेष ज्ञान-ध्यान भी नहीं करते । जो शरीर गन्दा व अपवित्र है उसे सुन्दर व पवित्र मानते हैं और जो ब्रह्म सुन्दर तथा पवित्र है उसकी सुन्दरता को देखते तक नहीं । जो देह जड़ है, उसे चेतन मानते हैं और जो आत्मा शरीर में चेतन है, अमृत है उसे जानते ही नहीं हैं और जो धन-भूमि-माता-पिता-गुरु-सन्तान आदि साधन-रूप में मिले हैं, उन्हें अपने आत्मा का भाग मानते हैं । जिनके वियोग से अपना ह्रास और इनके बढ़ने पर अपनी बढ़ोतरी मानते हैं । यह सब अज्ञान है, मूर्खता है, अविद्या-अन्धकार है । इसके कारण ही मनुष्य बहुत से पाप, दुर्व्यवहार, अधर्माचरण करता है और जिनके फलस्वरूप हमारा बार-बार जन्म व मरण होता है । **महर्षि दयानन्द जी** ने इस योगसूत्र का अर्थ इस प्रकार किया है –

"जो 'अनित्य' संसार और देहादि में, नित्य-अर्थात् जो कार्य जगत् देखा-सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है-वैसी विपरीत बुद्धि होना, अविद्या का प्रथमभाग है । अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि-दूसरा । अत्यन्त विषयसेवनरूप 'दुःख' में सुखबुद्धि आदि तीसरा । 'अनात्मा' में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है । इस चार प्रकार के विपरीत ज्ञान को 'अविद्या' कहते हैं । इससे विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र और दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना 'विद्या' है । अर्थात् 'वेत्ति यथावत् तत्त्वं पदार्थस्वरूपं यया सा विद्या, यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यश्चिनोति साऽविद्या' जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह 'विद्या' और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे, वह 'अविद्या' कहाती है ।"

– सत्यार्थ प्रकाश, समु० ९

इस अविद्या को ईश्वर, **जीव, प्रकृति के तत्त्वज्ञान** को प्राप्त करने पर ही मनुष्य को विवेक होता है और विवेक होने से ही मनुष्य अपनी अविद्या को नष्ट कर सकता है । इस तत्त्वज्ञान के वैदिक वाङ्मय में विद्या, अध्यात्म, योग, ब्रह्मविज्ञान, मोक्ष-विद्या, आत्म-विद्या आदि नाम हैं । मनुष्य के जीवन की सफलता तभी होती है जब वह जन्म-मृत्यु आदि दुःखों से मुक्त होकर ईश्वर को प्राप्त करे ! जिसके लिए हमें विनम्रता, श्रद्धा, साधना, गुरु एवं ईश्वर की कृपा की महती आवश्यकता है ।

प्रायः सबने बचपन से सृष्टि के पदार्थों की शिक्षा, धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा आदि साधनों से ही सुख पाया है । इनसे भिन्न, इनसे बेहतर किसी विशिष्ट अहिंसा, समाधि आदि योग के

साधनों से भी सुख पाया जाता है, इसकी लोग कल्पना तक नहीं करते । किन्तु योगी संसार के सुन्दर रूप आदि गुणों से सुख लेने को छोड़कर अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, समाधि आदि दिव्य गुणों से ईश्वर का नित्य आनन्द पाते हैं । उससे भिन्न अन्य सब लोग इन लौकिक सुखों को पाना ही अपने जीवन का मुख्य प्रयोजन समझते हैं । लोक में सब एक-दूसरे की देखादेखी परमेश्वर को न जानकर संसार के अनित्य सुखों को पाने में ही अपना सारा जीवन लगा रहे हैं । यह उनका अज्ञान है कि आनन्द-स्वरूप ईश्वर को छोड़कर संसार के इन नाशवान् विषय-भोगों में ही अधिकतम सुख मानना । इनमें तो थोड़ा-सा ही सुख है, जो कि भोग करते समय कुछ क्षणों में ही नष्ट हो जाता है । इन अपूर्ण सुखों को पाने के लिए लोग पागलपन की हद तक चले जाते हैं । इन सुखों की लालसा में लोग अनेक कुकर्म व अपराध करते हैं और उनका कठोर दण्ड भी भोगते हैं तथा कुछ लोग तो आत्महत्या भी कर लेते हैं । यह सब इसलिए हो रहा है क्योंकि उन्होंने इस संसार को ही सर्वोपरि समझ लिया है । इसे पाना ही अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य मान लिया है । जिसके लिए लोगों में सब ओर आपाधापी, मारामारी, हिंसा, झूठ, छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष आदि दोष बढ़ रहे हैं । आज अधिकांश लोग शान्ति, प्रीति, सत्य, न्याय, विनम्रता, सेवा, श्रद्धा, ज्ञान आदि सुख-शान्ति के मार्ग पर चलने के स्थान पर घोर अज्ञान, असत्य, अन्याय आदि अंधकाररूप मृत्यु आदि दुःखों के मार्ग पर चल रहे हैं । क्योंकि उन्हें अभी तक सत्य-असत्य का बोध नहीं हुआ है ।

ईश्वर का वेद ही वह सत्य ज्ञान है जो संसार में मानव-उत्पत्ति के बाद सबसे पहले उसने हमारे कल्याण के लिए प्रदान किया था । जैसे सभ्य माता-पिता अपने सन्तानों के लिए भोजन-वस्त्र-घर आदि का प्रबन्ध करने के साथ-साथ उन्हें सभ्यता, विद्या के संस्कार भी देते हैं वैसे ही ईश्वर ने हमें सुशिक्षित और सुसंस्कृत बुद्धिमान्, विद्वान् बनाने के लिए वेदों का सत्यज्ञान दिया था । ईश्वर ने हम जीवों के लिए इस सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करके धारण किया हुआ है । वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर हम अपने जीवन के वास्तविक प्रयोजन को पूर्ण कर सकते हैं । वेदों में सब प्रकार की उन्नति करने के लिए धर्माचरण को मुख्य बताया गया है । हम सबसे प्रीति, सत्य, न्याय आदि धर्मयुक्त होकर व्यवहार करना सीखें । व्यक्ति झूठ, पक्षपात, कठोर और अन्याय पूर्ण व्यवहार करके नीचे गिर जाता है, पतित हो जाता है । इसलिए अपनी वेदवाणी से भगवान् स्वयं कहते हैं –

उद्यानं ते पुरुष नावयानम् ।

– अथर्ववेद ८.१.६

अर्थात् (पुरुष) हे पुरुष ! (ते उत्-यानम्) तेरा ऊपर को जाना हो, उन्नति हो (न अव-यानम्) न कि नीचे को जाना, अवनति ।

आध्यात्मिक रूप से, स्वरूपतः हम सब आत्मा एक समान हैं । ईश्वर और ईश्वरभक्त योगियों की दृष्टि बहुत दिव्य, अलौकिक होती है, तभी वें सब जीवों के साथ आत्मवत् व्यवहार करते हैं । जबकि सांसारिक व्यक्तियों को आत्मज्ञान नहीं होता । इसलिए उनकी दृष्टि संकीर्ण होती है । हमें संकीर्ण या लघु दृष्टि को छोड़कर उदार, आध्यात्मिक दृष्टि को अपनाना चाहिए । हम यदि दोनों दृष्टियों से सुख और सफलता का परीक्षण करें तो एक योगी या साधक न्यूनतम बाह्य-साधनों में भी आनन्दित रहता है और अपनी साधना के द्वारा जीवन के परम पद परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है । जबकि एक लौकिक व्यक्ति विभिन्न सुख-सुविधाओं को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर चलता है और वह सब बाह्य-सुख साधनों से सम्पन्न होकर भी असन्तुष्ट, खिन्न, अशान्त, अतृप्त और दुःखी दिखाई देता है । संसार के सुखों को ही अपना सर्वस्व मानकर जीने वाले व्यक्ति सदा असन्तुष्ट, भयभीत व दुःखी रहते हैं । अशान्त व दुःखी व्यक्ति परमेश्वर को कभी नहीं पा सकते बल्कि दिव्य मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त करते हैं । मनुष्य में असुरता उसके जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार, अविद्या, अभिमान, राग, द्वेष आदि के रूप में होती है । सबको अपने इन आसुरी दुर्गुणों को पहचानकर छोड़ देना और अहिंसा, प्रीति, सत्य, संयम, ईश्वर-समर्पण आदि दिव्य गुणों को अपना लेना चाहिए । यही स्वयं सुखी होने और सबको सुखी करने का एकमात्र उपाय है ।

ईश्वर ने सारा संसार हमारे सुख के लिए बनाया है, दुःख के लिए नहीं । जो लोग दुःखों को भी स्वाभाविक या प्यारे मानते हैं अथवा दुःख का जीवन से अटूट सम्बन्ध मानते हैं, उन्हें तो दुःखों से पूरी तरह कोई नहीं छुड़ा सकता । यदि हम ध्यान से देंखे तो प्रायः हम तीन प्रमुख कारणों से दुःखी होते हैं । १. स्वयं के (अज्ञान, अभाव, असत्य, असावधानी, असन्तोष व दुष्प्रवृत्ति या दुष्कर्म) के कारण । २. दूसरों के (अज्ञान, असत्य, अन्याय, स्वार्थ, पक्षपात, शोषण अथवा असावधानी आदि) के कारण और ३. किसी प्राकृतिक-आपदा (भूकम्प आदि) के कारण ।

दुःखों के इन तीन मुख्य कारणों में सबसे पहला जो दुःख का कारण है, वह है स्वयं के किसी दोष अथवा कर्म के कारण दुःखी होना । हम यदि अपने ही किसी दोष के कारण दुःखी होते हैं तो उस दोष को हम दूर कर सकते हैं । कोई अन्य व्यक्ति हमारे किसी दोष को चाहे उम्रभर देखता रहे किन्तु जब तक हम स्वयं उस दोष को नहीं देखते तब तक उससे स्वयं दुःखी होते रहेंगे तथा दूसरों को भी दुःख देते रहेंगे । अपने व दूसरों के सुख-दुःख में हमारी क्या भूमिका है ? यह अवश्य देखें ! क्योंकि हमारा और दूसरों का पारस्परिक व्यवहार और सम्बन्ध ही सब सुख-दुःखों का सबसे बड़ा कारण होता है । आजकल कुछ घर-परिवारों में इतनी अधिक अशान्ति होती है कि लोग एक-दूसरे के दुर्व्यवहार से तंग आकर या तो स्वयं आत्महत्या कर लेते हैं या दूसरों को सताते या मारते हैं । हमें सबसे सद् व्यवहार ही करना चाहिए ! कभी किसी का अपमान नहीं करना चाहिए ।

किसी वस्तु या व्यक्ति से उचित सम्बन्ध होने पर हमें उससे सुख मिलता है और अनुचित सम्बन्ध होने पर दुःख मिलता है । जब व्यक्तियों से हमारा अविद्या-अज्ञान-मूर्खता-अभिमान-राग-द्वेषयुक्त सम्बन्ध होता है तो वह दुःखदायक होता है और जब सबसे हमारा विद्या-ज्ञान-प्रीति-सत्य-न्याययुक्त सम्बन्ध होता है तो हमें सुख मिलता है ।

Know yourself through

We all have sometimes or the other wondered staring at stars in the sky, whence from this world has come, who created it, who governs its laws etc. Nature provides us in abundance the reasons to be awestruck. Recently I read an article on emerald swallow-tail butterfly also called emerald peacock butterfly. This is a very beautiful butterfly with shimmering emerald colours sparkling like jewels. Some unique facts about the emerald green colour of butterfly are that it is not actually due to the green pigment, but due to structural colouration produced by the microstructure of the wing scales that we see green colour of butterfly. There are microstructures that refract the light, and a bigger fact is the colour of light these microstructures reflect is actually not Green, but Blue and Yellow, which in turn mixes and produces the perception of green colour when additively mixed. Isn't it amazing? There is No colour and definitely not green, yet the colour green is seen by our eyes. And its not illusion or Maya or perception, it is Real! Colour getting created from nothing! Or in Latin as they say - "creatio ex nihilo" - Creation Out of Nothing.

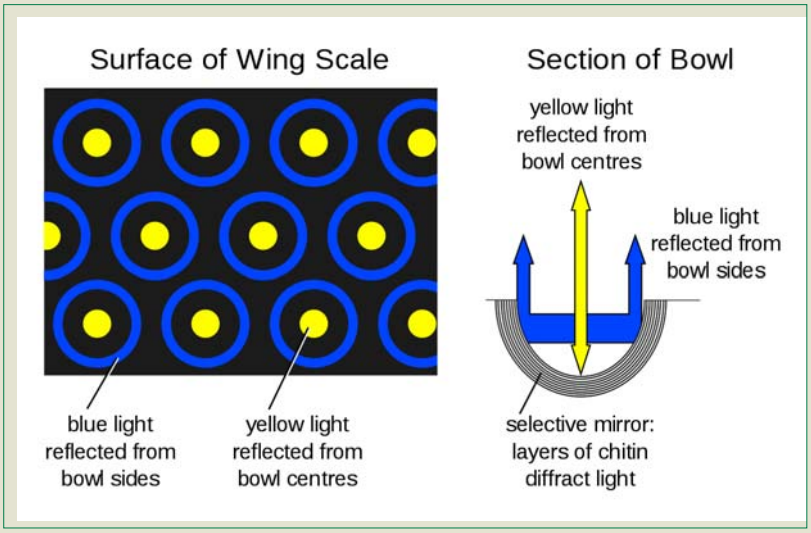

Nasadiya Sukta - Hymns of Creation

Talking about creation, and creation out of nothing - many thoughts start coming in our mind. And foremost is the thought about Creation of universe which is very interestingly explained in **Nasadiya Sukta - Hymns of Creation** - in the Rig Ved/ Mandal10/ Hymn 129 onwards. The verses are very thought provoking and paradoxically state that in the beginning

"neither the non-existent existed, nor did the existent exist then"

नासदासींनोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।

किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नभः किमासीद्गहनं गभीरम् ।। १।।

Stating further that **"then not death existed, nor the immortal"**

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या आह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वध्या तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ।। २।।

Leading to the thought - **"from heat (tapas) was born that one"**

तम आसीत्तनसा गूहलमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वाऽइदम् ।

तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।। ३ ।।

Further elaborating in Verse 4- desire (kâma) as the primal seed, and the first poet-seers (kavayas) who **"found the bond of being within non-being with their heart's thought".**

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतोबन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।। ४ ।।

And verse 5 stating - **Above was the power of conscious intent,**

Below was the strength of creative discipline (macro and micro forces above and within)

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।

रतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ।। ५ ।।

And the sixth verse states - **who will know and who can declare when and where from it all started since we, the seekers were not there and also the causative forces were not present.**

को अद्धा वेद क इह प्र वोवत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ।। ६ ।।

And the last verse is more profound in its meaning. **That One, the "author" of all events should know the beginning. Veda says That One also may not know!**

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।। ७ ।।

Whenever I read these verses, I get goose-bumps. How poetically the above verses speak of creation of universe and explain the Big-Bang. Science and Metascience combined poetically How they force you to think of "No-Time" and "No-Space" concept. "No Existence" and "No Non-existence" concept. How mystically they tell that we can never know what was there in the beginning and how events un-folded till date. How they in-explicitly inform that there are never ending cycles of birth, death and repetition of cosmos. Can we really never know all these events inspite of all our scientific advancements? May not ever, at least by means of physical scientific methods of cosmology, limited by our senses organs limitation.

And how beautifully the verses describe or show parallels between the Macro Being (Brahma) and Human Beings without explicitly mentioning these terms leaving readers to interpret or rather experience and create their own reality and truth. We understand that like human mind and desire, the cosmic mind and desire created seeds for germination and procreation and forces came to together to keep all matter into shape and together and Universe was born. And between one Beginning and End of universe, beings go through endless beginnings and ends ourselves in different form of lives.

The same thought of Creation is further carried out in a dialogue format in Keno-Upanishad.

Most profound and thought provoking questions and answers between the teacher and disciple about the Consciousness - What is it ? How does it work ?

ओं केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।। १ ।।

Impelled by what light, inspired by what power, does my mind think ? Impelled and inspired by what inner light are these words uttered ? What illumines my sight, gives me experience of seeing ?

And the teacher Answers

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुष्श्चक्षुः ।

अतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।। २ ।।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शश्रुम पूर्वेषां ये नस्तव्याचचक्षिरे ।।३।।

It is the ear of the ear, mind of the mind, tongue of the tongue, and also life of the life and eye of the eye……. The eye does not go there, nor speech, nor mind. We do not know That. We do not know how to instruct one about It. It is distinct from the known and above the unknown. We have heard it so stated by preceptors who taught us that.

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्यद्यते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ४ ।।

…….till verse 8

What speech does not enlighten, but what enlightens speech, know that alone to be the Brahman…….. What none breathes with the breath, but by which breath is in-breathed, That alone know thou to be the Brahman; not this which (people) here worship.

We all Human beings with our unchanging consciousness face numerous cycles of birth and death of this physical body. Vedas and other Hindu scriptures also describe about how this endless cycle can be broken by self realization or by attaining Moksha which needs to be the final goal of any Human Life. In our day to day pursuit of material happiness and gains we are mostly devoid of appreciating and feeling of awe of nature around us. We donot have time to think or worry about larger goals and questions of life and start living mechanical life or say a life of ignorance. And as they say ignorance is bliss, we feel we are happy and contented with our limited knowledge and being in our own comfort zone. But we need to watch out if this is Real Happiness or Anand or its just as momentary one. Questioning our own very "existence" and "no-existence" in this worldly physical form and meditating to look deeper into our core, our consciousness, our real self, beyond physical body is one of the prime objective of human life and we should try to inculcate this exercise as part of our daily routine of life as normally as we do other works like praying, eating, sleeping, working, enjoying, exercising etc.

Images and other information source :- Internet

Smt Sneh Rakhra ji releasing the book written by Smt Chandra Kanta Malik ji

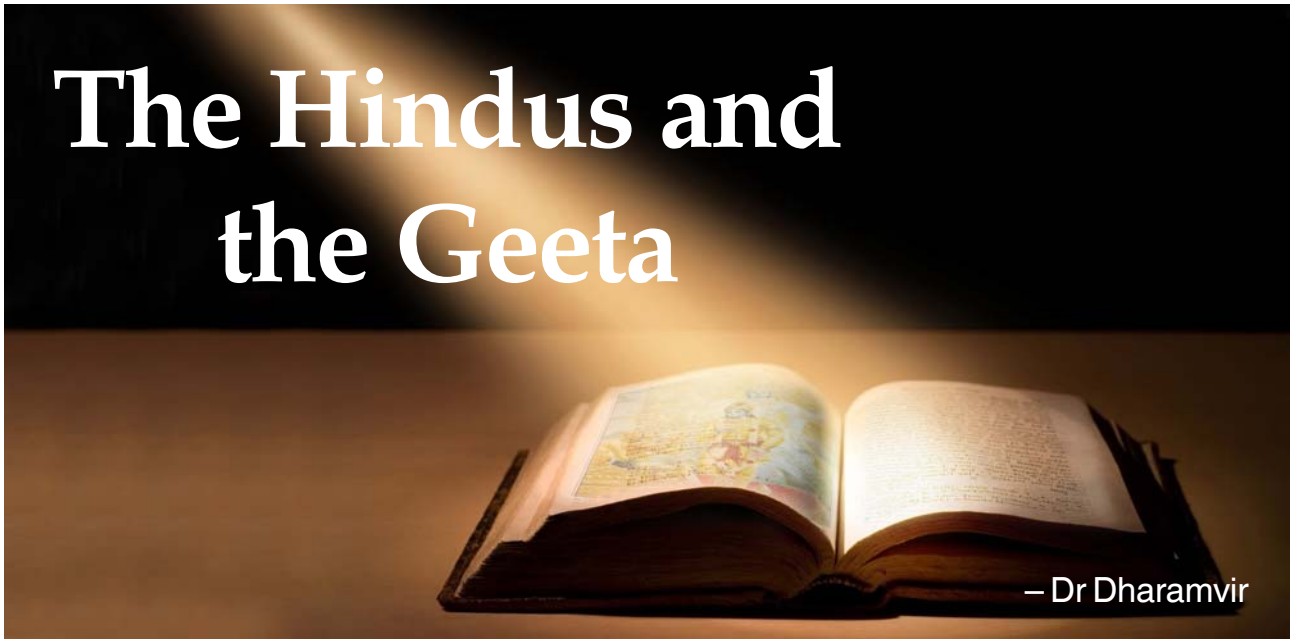

The Hindus and the Geeta

– Dr Dharamvir

The Gita is today respected as the foremost religious book of the Hindus. The message of Gita has been considered beneficial for everyone. The Prime Minister, in 2014 even gifted a copy of the Gita to the then President of the United States Barak Obama. This sent a positive message across the world. It seemed to convey that India was ready to give up its pessimism and was prepared for a brighter tomorrow. This copy of the Gita had been translated by Mahatma Gandhi, it is however unfortunate that even after reading the Gita, Gandhiji could not do justice with the Hindus.

The founder of RSS - Shri Hegdewar had once professed, whoever a Hindu worships, is either placed on a shelf or is pegged on a wall, surrenders all his problems to it and is at peace subsequently. What Shri Hegdewar meant was, a God for Hindus is a thing of worship not an example to be followed. After worshipping there is nothing left to be done. He prays for certain things, help in fulfillment of certain wishes and so on.

If a person reads the Gita and still does not think to speak against injustice and wrong, then it is futile for such a person to read the Gita. He is only wasting his time. Today if a person speaks of Vedas it is seen as religious animosity. One gentleman even had the audacity to ask, "Do you consider the Vedas and Upanishads to be above the Gita?" It seemed he had not seen anything beyond the Gita and had not even read the Gita properly. Had he studied it, he would have known that in the very opening of the Gita, there is a "Shlok", which says that the Upanishads are the cows, Shri Krishna is their keeper, Arjun is the calf and the elixir of Gita is the milk. Even by reading this much, it is clear that the Upanishads are older than the Gita. The original is always more significant than the analysis. These are the people wanting salvation by garlanding a book, how will they ever comprehend that the Upanishads are much older and much more significant than the Gita.

Upanishads are also not the limit. Gita and Upanishads have one similarity. Gita is not an independent book. Gita is the name of a part of the epic Mahabharata. There are numerous Gitas in Mahabharata. In the medieval period, people realised the significance of the dialogue between Krishna and Arjun, considered it useful for the general public and started preaching it separately from the rest of the book. Similarly Upanishads are also not an independent book. The spiritual people took out the references of "Atma- Paramtama" from the Vedic Literature and gave it the name Upanishad. On the basis of antiquity there are 10 to 11 Upanishads. Today we find numerous ideologies being floated as part of Upanishads and so has the Gita been

adulterated from time to time. Consequently a lot of misleading and incorrect information has become a part of the Gita. The Hindus consider it a religious book and propagate the incorrect and erroneous things also with great pride.

I remember one instance when the Vishwa Hindu Parishad had organised a Gita recital competition for all the schools of India. The most disappointing aspect of this competition was that the students were to memorise the most incorrect doctrines of incarnation though there is no dearth of valuable and useful lines in the book. Similarly, Gita Sammelan is organised in Kurukshetra, where the importance of Gita is discussed with great enthusiasm. But the moment anyone raises a question on the incorrect representations, the people are instantly agitated. But, it is only when we remove these medieval insertions from the book that the true importance of the Gita comes to life.

To understand this, I would like to narrate an incident here. The then chief of Delhi Jan Sangh, Shri Uttam Prakash Bansal once narrated his views on the Gita and said that he believes it to be the worst book on the planet. His reasoning being, that there are 24 questions raised in the book and it fails to answer even one of them. He had apparently sent the list of these 24 questions to the most profound scholars of the Gita: 1 - Swami Karpatri ji, 2- Former Shankaracharya Swami Satyamitranand ji and 3 - Dr. Karn Singh. According to Shri Bansal these people were not able to provide answers to the questions raised by him. They however tried to placate him by saying that this is a question of faith and he should confine his doubts to himself.

While this discussion was going on, I told him that I digress from his point of view. He then asked me to answer those 24 questions. I told him that i can provide an answer without even knowing those 24 questions. I told him that the Gita has only one question not 24 and there is only one answer. That one question is (न योत्स्य), I will not fight. Arjuna says, even if i get the kingdom of all the three realms, or I have to beg to eat, I will not fight. Saying this he drops his bow and quiver on the ground. Whatever follows are the questions and their answers. The next chapter discusses 6 circumstances and the solution to all of them. It only consists of doubts and their alleviation. Shri Krishna is the only character in the Mahabharata who believes in the outcome or the conclusion and not the process. To achieve the truth, he is adept at removing any obstacle. Here it would be apt to mention another incident from the Mahabharata, though it is not a part of the Gita. Karna's chariot is stuck in the battlefield. Karna tells Arjun that it would be a violation of the rules of warfare to attack an unarmed man. If we remember the answer that Shri Krishna gave, we will never be fooled by anyone in life. He said, that righteousness is meted out to those who are righteous. You killed Abhimanyu with seven other people. Arjun there is no Adharm in killing this man. Do not hesitate. The whole of Gita explains how to face the problems in the line of duty.

The followers of Gita need to understand that Upanishads are ahead of Gita and the Vedas precede the Upanishads. Hindus did not move ahead of Gita, not because it is the final book but because the dominant Brahmins kept them away from the right to read the Vedas. A scholar of the calibre of Shankaracharya also was forced to support the ban on the study of Vedas for women and shudras.

The essence of Gita is : Arjun is not ready to fight and kill his brothers, elders, teachers, and other close ones. Shri Krishna tells him not to worry. If he dies on the battlefield he would achieve heaven and if he lives he would rule the earth. There is no sin in killing the sinners even if they are ones own. At the end Arjun says:

नष्टो माहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थिोऽसि गतसन्देहः करिष्थे वचनं तवं ।। ७३ ।

My illusion has been dispelled. Realization has dawned on me. All my doubts have been removed. I shall execute your command.

Gita is a book of inspiration and endeavour - not to be worshipped and bowed to.

Ved Shatak and Gayatri Yajna

Continuing with our series of yajnas, Arya Samaj Indiranagar organized a "Ved Shatak and Gayatri Maha Yajna" on 29th and 30th July 2017. The Ved Shatak Yajna covered shataks from Rig Ved and Sam Ved. The program was spread over 2 sessions and evoked a large and enthusiastic participation from one and all. Towards the end of the Yajna, children from Arya families participated in the yajna and also performed some activities which included reciting the vedic mantras and meanings, sandhya mantras, poem and speech.

Sh Lucky Khemani launching the revamped website

Smt Sneh Rakhra singing the Shanti Geet

Sh Sandeep Mittal delivering the vote of thanks

ARYA SAMAJ INDIRANAGAR

MANDIR OFFICE BEARERS

PRESIDENT
Smt. Harsh Chawla – harshsuraj@hotmail.com

VICE PRESIDENT
Smt. Sneh Lata Rakhra

VICE PRESIDENT
Sh. Narendra Arya – narendra.arya@gmail.com

SECRETARY
Sh. Sandeep Mittal – sandeepmittal5@gmail.com

TREASURER
Sh. Amar Sharma – amarpita13@gmail.com

JOINT SECRETARY
Sh. Ravi Ochani – ravi.ochani@gmail.com

EDITOR
Smt. Harsh Chawla

TRUST OFFICE BEARERS

PRESIDENT
Sh Himanshu Aggarwal

SECRETARY
Sh Vivek Chawla

TREASURER
Sh Narendra Arya

ACKNOWLEDGEMENT
Vaidic Dhwani acknowledges with thanks the Hindi typesetting by Dr. Arun Dev Sharma and the layout design by Shri Yashodhara S

ARYA SAMAJ MANDIR
7 CMH Road, Indiranagar,
Bangalore 560 038
Phone 2525 7756
asmiblr@gmail.com
www.aryasamajbangalore.org

Like us @ www.facebook.com/asmiblr
Join our Facebook group - "Arya Samaj Indiranagar Bangalore" for regular updates

Cover Page Mantra has been taken from Sam Ved and checked by Dr. Arun Dev Sharma

Vaidic Dhwani is a quarterly newsletter published by ARYA SAMAJ MANDIR INDIRANAGAR (ASMI), mailed free of cost to members and interested individuals. It is for private circulation only. To request a copy, simply mail us your complete postal address. *Vaidic Dhwani* is also available on the ASMI website
www.aryasamajbangalore.org
Views expressed in the individual articles are those of the respective authors and not of ASMI. No part of this publication may be reproduced stored in a retrieval system, scanned or transmitted in any form or by any means electronic, photocopying, recording or otherwise, without the prior written permission of ASMI.

SERVICES OFFERED

SAMAJ CONDUCTS AT MANDIR

- **Daily Havan** from 7.30 to 8.00 am
- **Weekly Satsang**
  comprising havan, bhajans and discourses every Sunday from 10 to 11.45 am. Every last Sunday of the month, the programme extends to special discourse and Preeti-bhoj.
- **Annual Festivals - Varshikotsav, Vaidikotsav and Gayatri Maha Yajna**
  2-3 days programmes of havan, Bhajans and discourses on Vaidic philosophy by renowned scholars are conducted thrice a year.

SAMAJ CONDUCTS AT MANDIR OR YOUR VENUE

Namkaran & Annaprashan
- naming & first grain

Mundan & Upanayan
- head shaving & thread

Vivah - marriage with certificate

Griha Pravesh - house warming

Antyeshti - funeral rites

Shudhdhi - reversion from other faiths to Vaidic dharma with certificate valid in court of law

Havan - for any ceremony on any occassion, at any place

Contact
1) Smt Harsh Chawla 99726 14241
2) Pandit Brij Kishor Shastry 97410 12159
3) Pandit Arun Dev Sharma 98446 25085

YOGA & PRANAYAM

- **Yoga** (Evening) - 45 days
  Time : Every Mon/Tue/Thu/Fri - 7.00 - 8.30 pm
- **Pranayam** - 11 days
  Time : Mon to Sat - 6.00 - 7.15 am (Morning)
  & 7.00 - 8.30 pm (Evening)
  Venue : Basement Hall
  Sri Nanjunde Gowda 98458 56204

MEDITATION

Manasa Light Age Foundation - Starting from first Wednesday of every month and every Wednesday
Time : 7 - 8 pm
Venue : Arya Samaj
080 28465280, 9900075280

MUSIC

- **Vocal**
  Time : Sat & Sun 2 - 4 pm
  Smt Seethalakshmi 96200 56218
- **Kathak Dance**
  Time : Sat 12 - 2 pm & Sun 7 - 8.30 pm
  Smt Lakshmi Praroha 98447 31615
- **Instrumental Music**
  Time : Tue & Sat 4.30 - 7.30 pm
  Sri N K Babu 98441 22738